International Journal of Advanced Education and Research
ISSN: 2455-5746, Impact Factor: RJIF 5.34
www.alleducationjournal.com
Volume 1; Issue 12; December 2016; Page No. 24-26

उदयभानु 'हंस' के काव्य में प्रेम वैविध्य

अनिशा सिवाच

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

प्रेम संसार का आधार है। संसार की उत्पत्ति व विकास इसी पर टिके हैं। प्रेम भाव से समस्त संसार सुखद प्रतीत होता है। 'प्रेम' शब्द का उत्पत्ति के आधार पर अर्थ है – प्रीति देने वाला, अनंत तृप्ति देने वाला। जबकि 'प्रेम' शब्द का कोशानुसार अर्थ है – ''गुण, रूप, स्वभावादि के कारण उत्पन्न होने वाला वह आकर्षण एवं सुखद मनोभाव जिससे प्रभावित होकर एक व्यक्ति दूसरे को सदा अपने साथ या निकट और प्रसन्न रखना चाहता है।''[1]
साहित्य के अंतर्गत प्रेम के सुखद और दुःखद दोनों पहलुओं को समान रूप से महत्त्व दिया जाता है, इसीलिए साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है।
प्रेम एक मानवीय गुण है जो मनुष्य को मनुष्य कहलाने योग्य बनाता है। प्रेम लौकिक और अलौकिक दो प्रकार का माना गया है। लौकिक प्रेम से अभिप्राय सांसारिक प्रेम से है जबकि अलौकिक प्रेम भक्ति के ही एक रूप के अंतर्गत स्वीकार किया गया है। प्रेम में मुख्य रूप से दो पक्ष विद्यमान होते हैं – एक प्रेम करने वाला और दूसरा प्रेम किया जाने वाला।
प्रेम शब्द की व्यापकता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि प्राचीन काल से ही अनेक कवियों और आलोचकों द्वारा इसको व्याख्यायित करने का प्रयास किया जाता रहा है। जहाँ भक्तिकालीन सूफी काव्यधारा के प्रवर्तक मलिक मुहम्मद जायसी प्रेम के कारण मिलने वाले कष्टों को सहते हुए भी उसे छोड़ना नहीं चाहते–

''बांगिड़ जरै, जरै जस माह
बहुरिजो भूंजिस तजो नवारू।''[2]

वहीं रीतिकालीन रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि घनानंद प्रेम को सीधा–सरल मार्ग बताते हैं–

''अति सूधो स्नेह का मार्ग है
जहाँ नेकु स्यानप बाँक नहीं,
तहाँ साँचे चलै, तजि आपन पौ
झलकै कपटि जै निशांक नहीं।''[3]

रविन्द्रनाथ टैगोर ने प्रेम को परिभाषित करते हुए कहा है कि ''प्रेम का दायरा सीमित नहीं है। यह प्रेम व्यक्त–अव्यक्त के प्रति, जड़–चेतना के प्रति, बड़ों के प्रति, समव्यस्कों का एक–दूसरे के प्रति होता है। प्रेमाभाव में जीवन सुचारू रूप से नहीं चल सकता। प्रेम ही कुटुंब और समाज का आधार है।''[4]
डॉ० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी के अनुसार, ''जब एक व्यक्ति का आकर्षण दूसरे के प्रति इतना बढ़ जाता है कि उसकी प्राप्ति, उसका सान्निध्य, उसकी सुरक्षा और उसकी प्रसन्नता में ही उसे सहानुभूति होने लगती है तो इस मनोवृत्ति को प्रेम कहते हैं।''[5]

हरियाणा के प्रथम राज्यकवि उदयभानु 'हंस' जी हिंदी काव्य जगत् का जाना–पहचाना नाम हैं। वास्तव में वे काव्य गगन के 'भानु' तथा काव्य सरोवर के 'हंस' हैं। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से राज्य और प्रांत की सीमाओं से ऊपर उठकर एक राष्ट्रीय कवि के रूप में अपनी पहचान स्थापित की है। हंस जी ने प्रेम वैविध्य अर्थात् श्रृंगारिक प्रेम, प्रकृति प्रेम, मानवीय प्रेम, साहित्य प्रेम, राष्ट्रीय प्रेम, संस्कृति प्रेम आदि प्रेम के विविध रूपों को अपने काव्य के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की है।
कविवर 'हंस' के अनुसार, प्रेम भाव पाप और पुण्य से परे है। ईश्वर द्वारा प्रदत्त अनमोल वरदान है जो सिर्फ महसूस किया जा सकता है। कवि की दृष्टि में प्रेम हृदय की मधुर गांठ है, जो किसी से खोली नहीं जा सकती। वह तो गूंगे की बोली है –

''प्यार हृदय की मधुर गांठ है,
नहीं किसी ने जो खोली है।
बातूनी जग क्या समझेगा?
यह तो गूंगे की बोली है।''[6]

हंस जी के काव्य में श्रृंगारिक प्रेम के दोनों ही रूपों – संयोगावस्था और वियोगावस्था का सुंदर चित्रण हुआ है। संयोगावस्था में नायक–नायिका के पारस्परिक साक्षात्कार, दर्शन औत्सुक्य, वयःसंधि इत्यादि प्रणय भावों की मनोहारी अभिव्यक्ति हुई है। 'हंस' जी कहते हैं –

''मधुर प्यार यौवन की सहज निशानी है,
रूप सरोवर का लहराता पानी है।
यह तो जीवन की रसमय रामायण है,
जो बस दो हृदयों को मिलकर गानी है।''[7]

वियोगावस्था को ही प्रेम की वास्तविक कसौटी स्वीकार किया गया है। 'हंस' जी ने अपने काव्य में जहाँ संयोगावस्था के सुंदर बिंब उकेरे हैं, वहीं वियोगावस्था और उसकी शास्त्र–विहित दशाओं का भी मनोरम व मर्मस्पर्शी अंकन किया है –

''मेरे विरही प्राण हर घड़ी जलते हैं मरघट से।
पागल कान चौंक पड़ते हैं पलकों की आहट से।
मन का भी दर्पण है टूटा–
किन्तु प्यार का दाग न छूटा,
नयनों के खारे जल से भी धोया कितनी बार।
मैं तुझको दिन–रात याद कर रोया कितनी बार।''[8]

प्रकृति मानव की चिर सहचरी है। मनुष्य को जितना आनंद, सुख–संतोष प्रकृति के आँचल में रहकर मिलता है, वह संसार में अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। कवियों और कलाकारों के लिए तो प्रकृति प्रेरणा का अक्षय भण्डार है। काव्य के सच्चे साधक प्रकृति रूपी

जीवन के दोनों रूपों अर्थात् काँटों रूपी दुःखों तथा फूलों रूपी सुखों को समान रूप से प्यार करते हैं तथा स्वीकारते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार, ''प्रकृति हमारे सामने आती है – कहीं मधु सुसज्जित, या सुंदर रूप में, कहीं रूखे बेडोल या कर्कश रूप में, कहीं भव्य एवं विशाल रूप में या विचित्र रूप में, कहीं उग्र रूप में, कहीं कुशल और भयंकर रूप में। सच्चे कवि का हृदय उसके इन सब रूपों में लीन होता है।''[9]

उदयभानु 'हंस' जी ने प्रकृति के प्रति अपने प्रेम को व्यक्त करने के लिए अपने पूर्ववर्ती कवियों का अनुकरण किया है। वसन्त–वर्षा, प्रातः–संध्या, सूर्य–चंद्र, बादल–बिजली आदि प्रकृति के विविध रूप उन्हें विशेष रूप से प्रिय हैं। 'नन्ही गंगा' कविता के माध्यम से कवि ने जीवनदायिनी नदी का अत्यंत जीवंत रूप प्रस्तुत किया है –

''मरू प्रदेश में कल–कल करती 'जुई' नहर है आई।
सूनेपन में गूंज उठे, जीवन की शहनाई।''[10]

कविवर ने प्रकृति के माध्यम से लोकमंगल की उदात्त भावना को अभिव्यक्ति दी है। इसी भावना के परिणास्वरूप कवि ने ऐसा बादल बनने की मनोकामना व्यक्त की है, जो पृथ्वी को हरा–भरा कर सौभाग्यशाली बना सके–

''कितने सावन देते रहे दिलासे हैं,
फिर भी रेगिस्तान अभी तक प्यासे हैं,
जो धरती की सूनी मांग संवार दे,
मैं ऐसा बादल बन जाना चाहता।''[11]

एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य से प्रेम ही मानवीय प्रेम कहलाता है। यह प्रांत, राष्ट्र और देश–विदेश की सीमाओं से परे होता है। मनुष्य अपनी दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक–दूसरे पर निर्भर रहता है। मानवीय प्रेम में मित्रता, अहिंसा, करूणा, दया, सेवा, त्याग, सहानुभूति इत्यादि भावों को शामिल किया गया है।

कवि उदयभानु जी के काव्य में मानवतावादी विचारधारा स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। 'वसुद्यैव कुटुम्बकम' की भावना उनके काव्य का मूल भाव है। वे एक संवेदनशील मनुष्य हैं जो दूसरों के दुःख–दर्द की गहराई को महसूस कर सकते हैं–

''मैं हृदय का गीत हूँ दर्द की पहचान हूँ,
अश्रु हूँ हर आँख का हर होंठ की मुस्कान हूँ
क्या हूँ, कौन हूँ, कहाँ का हूँ अधिक मत पूछिए?
प्यार है मजहब मेरा और मैं इंसान हूँ।''[12]

'हंस' जी किसी भी प्रकार के भेदभाव को स्वीकार नहीं करते। वे प्रत्येक मनुष्य के साथ समानता का व्यवहार रखते हैं। शोषित–पीड़ित व्यक्तियों के लिए उनके मन में अपार करूणा है। उनके मानवीय प्रेम का चरमोत्कर्ष विश्व–मानवता और विश्व–बंधुता के रूप में दिखाई देता है–

''रूप, रंग, भाषा, प्रदेश की झूठी दीवारें,
मेरे मानस की बयार को रोक नहीं सकती,
जात–पात या संप्रदाय की महाशक्तियाँ भी
विश्व–बंधुता के विचार को रोक नहीं सकती।''[13]

कवि के अनुसार, जब कोई व्यक्ति निःस्वार्थ भाव से बिना किसी लाभ–हानि के मनुष्य मात्र का भला चाहता है। वहीं मानवीय प्रेम सर्वश्रेष्ठ होता है। शांति और सौहार्द विश्व में फैलाना प्रत्येक मनुष्य का धर्म है। इसी लोक कल्याणकारी भाव की अभिव्यक्ति करते हुए 'हंस' जी कहते हैं –

''मधुर प्रेम का प्याला भरकर, सबकी प्यास बुझाता चल।
अपने खून–पसीने से, धरती को स्वर्ग बनाता चल।
जो मटकी भूली भटकी हो, पनघट तक पहुँचाता चल।
हर विधवा रात्रि के माथे पर सिन्दूर सजाता चल।''[14]

'हंस' जी का साहित्य प्रेम अनमोल है। वे एक सच्चे साहित्यकार हैं, जिन्होंने समाज में जो अच्छी–बुरा देखा और समझा उसी के अनुरूप अपनी कलम चलाकर अपने भावों को अभिव्यक्त किया। आर्थिक लाभ के लिए अपने छंदों को बेचना उन्हें कतई स्वीकार्य नहीं है –

''मैं सृजन का आनंद नहीं बेचूगाँ।
निज हृदय का मकरन्द नहीं बेचूगाँ।
मैं भूख से मर जाऊँगा हँसते–हँसते,
रोटी के लिए छन्द नहीं बेचूगाँ।''[15]

राष्ट्रीयता एक ऐसी भावना है, जिसका संबंध मानव की अंतश्चेतना से संबंधित है जो अनिर्वचनीय होने के कारण केवल अनुभूति का विषय है, अभिव्यक्ति का नहीं। राष्ट्रीय प्रेम 'हंस' जी के काव्य का मूल तत्त्व है। राष्ट्रीय एकता, देशभक्ति, जागरण, नवनिर्माण, भारतीय सेना के वीरों व अमर शहीदों की गाथाओं को कवि ने वाणी दी है –

''हम विश्व शांति के दूत नए युग का निर्माण करेंगे,
राष्ट्रीय एकता द्वारा हर मुश्किल आसान करेंगे।''[16]

'संत सिपाही', 'देसां में देस हरियाणा', 'हरियाणा गौरव गाथा' आदि रचनाओं में उनका राष्ट्र प्रेम अभिव्यक्त हुआ है। कवि का मानना है कि जो व्यक्ति देश के लिए प्राण–न्यौछावर नहीं कर सकता, वह अत्यंत निकृष्ट है, उसे जीने का कोई अधिकार नहीं है –

''जिस व्यक्ति के जीवन में सदाचार नहीं,
निर्धन के लिए दिल में भरा प्यार नहीं,
आता नहीं देश पे मरना जिसको
उस नीच को जीने का अधिकार नहीं।''[17]

किसी भी राष्ट्र के लिए राष्ट्रीयता की भावना को सर्वोपरि बताते हुए 'हंस' जी कहते हैं–

''होता नहीं बलवान केवल देश सैन्य–प्रभाव से।
यदि शून्य हो उसका हृदय राष्ट्रीयता के भाव से।''[18]

राष्ट्र के प्रति विशेष लगाव के कारण कवि अपने देश को सदैव समृद्ध व उन्नत देखने को लालायित रहते हैं। राष्ट्र के प्रति अपना सर्वस्व न्यौछावर करने में 'हंस' जी गौरव का अनुभव करते हैं–

''यह अद्भुत देश हमारा है,
सबकी आँखों का तारा है,
इसके लिए लगा देंगे हम बाजी अपनी जान की।
जय बोलो हिन्दुस्तान की।''[19]

संस्कृति का अर्थ है – सुधारने वाली या परिष्कार करने वाली। संस्कृति के अंतर्गत रहन–सहन, आचार–विचार, साहित्य, कला,

धर्म, दर्शन आदि को सम्मिलित किया जाता है। डॉ० हरिश्चंद्र वर्मा के अनुसार, ''संस्कृति उन उदात्त विचारों और पवित्र कार्यों की श्रृंखला को कहते हैं जो किसी देश या जाति को गति प्रदान करते हैं।''[20] कविवर उदयभानु जी को अपनी गौरवशाली संस्कृति से बहुत प्रेम है। आधुनिकता के चक्रव्यूह में फँस कर जो अपने नैतिक मूल्यों को, अपनी जड़ों को भूलते जा रहे हैं, उनके प्रति चिंता व्यक्त करते हुए 'हंस' जी कहते हैं –

''द्रौपदी फिर लुट रही है
दिन दहाड़े,
मौन पांडव
देखते हैं आँख फाड़े।
हो गया है सत्य अंधा,
न्याय बहरा और धर्म अपंग।''[21]

कवि ने वर्तमान में व्याप्त भय, संत्रास, अनास्था और बिखराव आदि अनैतिक मूल्यों को भूलाकर अपने परम्परागत सांस्कृतिक मूल्यों को खोजने का संदेश युवा पीढ़ी को दिया है ताकि हम एक उज्ज्वल भविष्य की कामना को साकार होता देख सकें।
निष्कर्षतः कह सकते हैं कि प्रेम एक सहज मनोवृत्ति है और 'हंस' जी उसके जीते–जागते उदाहरण हैं। उनके काव्य में श्रृंगारिक प्रेम, प्रकृति प्रेम, मानवीय प्रेम, साहित्य प्रेम, राष्ट्रीय प्रेम, संस्कृति प्रेम इत्यादि प्रेम के सतरंगी रंग बिखरे हुए हैं। अतः कविवर उदयभानु 'हंस' जी का प्रेम वैविध्य बेजोड़ है।

संदर्भ सूची

1. (सं०) कालिका प्रसाद, बृहत् हिन्दी कोश, पृ० 730
2. मलिक मुहम्मद जायसी, पद्मावत, पृ० 354
3. (सं०) विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, घनानन्द ग्रंथावली, सुजानहित, पृ० 86
4. (डॉ०) गणपति चंद्रगुप्त, भारतीय साहित्य में श्रृंगार रस, पृ० 45
5. (डॉ०) राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, श्रृंगार का शास्त्रीय विवेचन, पृ० 81
6. उदयभानु 'हंस', सरगम, पृ० 70
7. वही, पृ० 40
8. वही, पृ० 65
9. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चिंतामणि, पृ० 103
10. उदयभानु 'हंस', देसां में देस हरियाणा, पृ० 38
11. उदयभानु 'हंस', सरगम, पृ० 15
12. उदयभानु 'हंस', हंस रचनावली, भाग–1, पृ० 21
13. वही, पृ० 404
14. उदयभानु 'हंस', सरगम, पृ० 21–22
15. उदयभानु 'हंस', कुछ कलियाँ–कुछ काँटे, पृ० 23
16. उदयभानु 'हंस', वन्दे मातरम्, पृ० 14
17. उदयभानु 'हंस', कुछ कलियाँ–कुछ काँटे, पृ० 1
18. उदयभानु 'हंस', संत सिपाही, पृ० 76
19. (स०) रामसजन पाण्डेय, कविवर उदयभानु 'हंस' की काव्य साधना, पृ० 23
20. (डॉ०) हरिश्चंद्र वर्मा, निराला काव्य का सांस्कृतिक पक्ष, (लेख), सप्तसिंधु, पृ० 39
21. (स०) रामसजन पाण्डेय, उदयभानु 'हंस' रचनावली, खण्ड–1, पृ० 447